चैन सिंह

बनाम

माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड एवं अन्य

(28 सितंबर, 2004)

[शिवराज वी. पाटिल तथा बी.एन. श्रीकृष्णा, न्यायाधीश**]**

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 12 और 226–'राज्य'–निर्धारण–माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड–रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने का प्रश्न–श्राइन बोर्ड के कर्मचारी तथा बोर्ड के दुकानों के किरायेदारों ने विभिन्न राहतों के लिए उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएँ दायर कीं–उच्च न्यायालय ने भूरी नाथ के मामले के सिद्धांत पर भरोसा करते हुए यह निर्णय दिया कि बोर्ड अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' नहीं है और इसलिए रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं है–शुद्धता–अभिनिर्धारित : भूरी नाथ का मामला इस प्रश्न से संबंधित नहीं था कि क्या अनुच्छेद 226 का क्षेत्र श्राइन बोर्ड तक विस्तृत हो सकता है–अनुच्छेद 12 का क्षेत्र कहीं अधिक व्यापक है–उसे, उपयुक्त मामलों में, 'किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण' के विरुद्ध प्रयोग किया जा सकता है, जिसमें सरकार भी सम्मिलित है–उच्च न्यायालय को निर्देश दिया गया कि वह प्रदीप कुमार बिस्वास के मामले में निर्धारित सिद्धांतों और परीक्षणों को लागू करते हुए अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिकाओं की ग्राह्यता पर विचार करे–अतः मामला नए सिरे से विचार के लिए उच्च न्यायालय को वापस भेजा गया–जम्मू और कश्मीर श्री माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1988, धारा 20।

प्रतिवादी-बोर्ड के कर्मचारी तथा उसके दुकानों के किरायेदारों ने विभिन्न राहतों की मांग करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएँ दायर कीं। उच्च न्यायालय ने भूरी नाथ बनाम श्री माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड [1997] 2 एससीसी 745 के निर्णय पर भरोसा करते हुए यह माना कि प्रतिवादी-बोर्ड अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' नहीं है और इसलिए रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं है। अतः यह अपील दायर की गई।

अपील का निपटारा करते हुए, न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारित: 1. भूरी नाथ का मामला इस प्रश्न से संबंधित नहीं था कि क्या अनुच्छेद 226 का विस्तार माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड तक हो सकता है। अनुच्छेद 226 का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसे "किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण" के विरुद्ध प्रयोग किया जा सकता है, और उपयुक्त मामलों में "किसी भी सरकार" के विरुद्ध भी। [809-C, D; 809-E, F]

भूरी नाथ बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, [**1997] 2 एससीसी 745, अनुपयुक्त ठहराया गया।**

प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान, **[2002] 5 एससीसी 111**; *सबाजीत तिवारी बनाम भारत संघ*, **[1975] 1 एससीसी 485**; *गुल्लापल्ली नागेश्वर राव बनाम ए.पी. एसआरटीसी*, [**1959] सप्ली. 1 एससीआर 319**; *भारत संघ बनाम सुदांशु कुमार*, **[1971] 3 एससीसी 265**; *अजय हसिया बनाम खालिद मुजीब*, एआईआर **1981 एससी 487**; तथा *रमना दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण*, एआईआर **1979 एससी 1628**–पर भरोसा किया गया।

किरण बाबू बनाम आंध्र प्रदेश सरकार, **एआईआर 1986 एपी 275** तथा *हरद्वारी लाल बनाम जी.डी. तपासे*, **एआईआर 1982 पी एंड एच 439** – संदर्भित।

2. **अपीलकर्ताओं द्वारा व्यक्त इस आशंका पर कोई मत व्यक्त नहीं किया गया कि जम्मू और कश्मीर श्री माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1988 की धारा 20 श्रम कानूनों के अंतर्गत आने वाले दीवानी वादों और निर्णयों को प्रतिबंधित करती है। उच्च न्यायालय पहले यह विचार करेगा कि क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दायर रिट याचिकाएँ ग्राह्य हैं, और इसके लिए वह *प्रदीप कुमार बिस्वास* के मामले में निर्धारित सिद्धांतों और परीक्षणों को लागू करते हुए यह जाँच करेगा कि क्या श्राइन बोर्ड उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अधीन आता है। [811-A, B, C]**

प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान, [2002] 5 एससीसी 111– संदर्भित।

3. **उच्च न्यायालय यह भी विचार करेगा कि क्या रिट याचिकाकर्ताओं के लिए कोई वैकल्पिक उपाय दीवानी वाद या औद्योगिक न्यायनिर्णयन के रूप में उपलब्ध है। यदि उच्च न्यायालय**

1988 के अधिनियम की धारा 20 के प्रावधान की व्याख्या करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि रिट याचिकाकर्ताओं के लिए ऐसा वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है, तो उच्च न्यायालय को यह अधिकार होगा कि वह उपयुक्त निर्णय ले, जिसमें पक्षकारों को उपयुक्त उपाय के लिए उस मंच पर भेजना भी सम्मिलित हो सकता है। [811-C, D]

4. यदि उच्च न्यायालय यह मत व्यक्त करता है कि रिट याचिकाएँ ग्राहय हैं और रिट याचिकाकर्ताओं के लिए कोई अन्य समान रूप से प्रभावी वैकल्पिक उपाय उपलब्ध नहीं है, तो उच्च न्यायालय रिट याचिकाओं का उनके गुण-दोष के आधार पर निर्णय करेगा। [811-D, E]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 4596/1999।

जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा ओ.डब्ल्यू.पी. संख्या 523/1995 में दिनांक 8.2.1999 को पारित निर्णय और आदेश से उत्पन्न।

सिविल अपील संख्याएँ 4597-4598/1999 तथा 6334/2004।

एम.एल. वर्मा, एस.एस. लहर, रंजीत कुमार, सत्य मित्रा, पी.डी. शर्मा तथा सुश्री बीनू तम्टा अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित हुए।

पी.पी. राव तथा उपेन्द्र के. जलाली, मनु नायर, रोहित कपूर, ध्रुव देवान – मेसर्स सुरेश ए. श्रॉफ एंड कंपनी के लिए; अनीश सुहरावर्दी तथा अमित आनंद प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित हुए।

न्यायालय का निर्णय द्वारा:

बी.एन. श्रीकृष्णा, न्यायाधीश: ये सिविल अपीलें तथा विशेष अनुमति याचिका जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित उसी निर्णय से उत्पन्न हुई हैं और उसी को चुनौती देती हैं, जिसमें प्रतिवादियों की लेटर्स पेटेंट अपीलें स्वीकार कर ली गई थीं।

जम्मू में स्थित एक प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ, जहाँ पूरे वर्ष भक्तों की भीड़ लगी रहती है, माता वैष्णो देवी त्रिकुटा पहाड़ियों पर स्थित है, जो जम्मू शहर से लगभग 45 किलोमीटर की दूरी पर है। इस श्राइन का प्रारम्भिक प्रबंधन 'धर्मार्थ ट्रस्ट' नामक एक ट्रस्ट द्वारा किया जाता था, जो न केवल श्राइन के कार्यों का संचालन करता था, बल्कि तीर्थयात्रियों के कल्याण का भी ध्यान रखता था। पूजा-अर्चना करने और श्राइन की सुरक्षा

की वास्तविक जिम्मेदारी बरिदारों (Baridars) के पास थी, जो श्राइन के निकट स्थित दो गाँवों के निवासी थे। श्राइन की लोकप्रियता बढ़ने के साथ ही वहाँ आने वाले तीर्थयात्रियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। जब श्राइन पर आने वाले भक्तों की संख्या अत्यधिक हो गई और उसे संभालना कठिन हो गया, तब मंदिर के प्रशासन और प्रबंधन तथा तीर्थयात्रियों के लिए उपलब्ध सुविधाओं के संबंध में शिकायतें सामने आने लगीं। इसी कारण 'जम्मू और कश्मीर श्री माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1986' (राज्यपाल अधिनियम संख्या XXXIII, 1986) बनाया गया, जिसे बाद में 1988 में विधानमंडल द्वारा पारित अधिनियम (अधिनियम संख्या XVI, 1988) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, जिसे 'जम्मू और कश्मीर श्री माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1988' (आगे '1988 अधिनियम' कहा जाएगा) के नाम से जाना जाता है।

1988 के अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत एक वैधानिक बोर्ड का गठन किया गया है, जिसके पदेन अध्यक्ष जम्मू और कश्मीर के राज्यपाल होते हैं। श्री माता वैष्णो देवी श्राइन तथा श्राइन निधि का प्रशासन, प्रबंधन और संचालन इस बोर्ड में निहित है, जिसमें एक अध्यक्ष और अधिकतम दस सदस्य होते हैं। 1988 के अधिनियम की धारा 6 के अनुसार बोर्ड को एक निगमित निकाय (body corporate) माना गया है, जिसे स्थायी उत्तराधिकार और एक सामान्य मुहर प्राप्त होगी, तथा उक्त नाम से बोर्ड वाद दायर कर सकता है और उसके विरुद्ध वाद दायर किया जा सकता है। 1988 के अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत बोर्ड को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी तथा ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारी नियुक्त करे, जिन्हें वह आवश्यक समझे, और जिनके पदनाम, वेतन, भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें समय-समय पर निर्धारित की जा सकती हैं। 1988 के अधिनियम की धारा 15 यह प्रावधान करती है कि बोर्ड के कर्मचारी जम्मू और कश्मीर क्षेत्र में लागू राज्य रणबीर दंड संहिता की धारा 21 (जो भारतीय दंड संहिता के समकक्ष है) के अर्थ में लोक सेवक माने जाएंगे।

1988 के अधिनियम द्वारा लाया गया एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि धारा 19 के अनुसार बरिदारों के सभी अधिकार समाप्त कर दिए गए।

धारा 20 यह प्रावधान करती है कि इस अधिनियम के अंतर्गत सद्भावना में किए गए या किए जाने के लिए अभिप्रेत किसी कार्य के संबंध में बोर्ड या उसके अधिकारियों के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई वाद या अन्य कार्यवाही नहीं की जा सकती।

धारा 24 के अंतर्गत बोर्ड को अपने कर्तव्यों के निर्वहन के लिए, अधिनियम के प्रावधानों के प्रतिकूल न होने की शर्त पर, उपनियम बनाने का अधिकार दिया गया है।

सिविल अपील संख्या 4596/1999:

अपीलकर्ता चेन सिंह एक पूर्व सैनिक है, जो यह दावा करता है कि वर्ष 1983 में वह श्री माता वैष्णो देवी धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा उसे वार्षिक ₹15,000 किराये पर दिए गए एक दुकान परिसर का किरायेदार बना था। अपीलकर्ता अपनी दुकान में तीर्थयात्रियों के उपयोग के लिए छोटे-मोटे सामानों की बिक्री का व्यवसाय करता था और इस व्यापार के संचालन के लिए उसने सहायक निदेशक, पर्यटन सहित विभिन्न प्राधिकरणों से लाइसेंस प्राप्त किए थे। जम्मू और कश्मीर माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1986 के लागू होने के बाद (जिसे बाद में 1988 के अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया), अपीलकर्ता का दावा है कि धारा 19(3) के कारण वह बोर्ड का किरायेदार बन गया। उसका कहना है कि इसके बाद वह बोर्ड का किरायेदार बना रहा। बोर्ड के अस्तित्व में आने के पश्चात अपीलकर्ता को धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा आवंटित मूल दुकान से हटाकर बोर्ड द्वारा निर्मित एक नई दुकान में स्थानांतरित कर दिया गया। अपीलकर्ता के अनुसार नई दुकान का क्षेत्रफल कम था और बोर्ड के अधिकारी उसके दैनिक व्यवसाय में हस्तक्षेप भी करते थे, क्योंकि वे उसे वहाँ से हटाकर किसी नए किरायेदार से अधिक किराया प्राप्त करना चाहते थे।

अपीलकर्ता ने जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय में ओ.डब्ल्यू.पी. संख्या 184/1994 के रूप में एक रिट याचिका दायर की, जिसका निपटारा उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा इस निर्देश के साथ किया गया कि बोर्ड याचिकाकर्ता की शिकायत के संबंध में प्रस्तुत उपयुक्त अभ्यावेदन पर विचार करेगा। इसके तुरंत बाद,

दिनांक 10.7.1995 को बोर्ड ने उसे एक नोटिस जारी कर सूचित किया कि उसने उच्च न्यायालय के निर्देशानुसार कोई अभ्यावेदन प्रस्तुत नहीं किया है और यदि वह तीन दिनों के भीतर बोर्ड के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर नहीं करता है, तो उसके विरुद्ध उपयुक्त समझी जाने वाली आगे की कार्रवाई की जाएगी। याचिकाकर्ता ने इस नोटिस का विरोध किया और इसके पश्चात उच्च न्यायालय के समक्ष एक अन्य रिट याचिका, ओ.डब्ल्यू.पी. संख्या 523/1995 दायर की, जिसमें उसने विभिन्न राहतों की मांग की, जिनमें उसे जारी किए गए नोटिस को निरस्त करने की प्रार्थना तथा बोर्ड के अधिकारियों को उसके व्यवसायिक कार्यों में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए परमादेश जारी करने की मांग भी सम्मिलित थी। यह रिट याचिका उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 8.2.1999 को इस आधार पर खारिज कर दी गई कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा एल.पी.ए. संख्या 182/1992 में दिनांक 27.1.1999 को दिए गए निर्णय के आलोक में यह रिट याचिका ग्राह्य नहीं है। अतः यह अपील दायर की गई।

सिविल अपील संख्याएँ 4597-4598/1999

इन दो अपीलों में अपीलकर्ता बोर्ड के कर्मचारी थे, जो बोर्ड के अंतर्गत विभिन्न पदों पर कार्यरत थे। अपीलकर्ताओं का कहना है कि उनकी सेवा शर्तें संतोषजनक नहीं थीं, इसलिए अपनी सेवा शर्तों में सुधार लाने के उद्देश्य से सामूहिक सौदेबाजी के लिए उन्होंने एक ट्रेड यूनियन का गठन किया। उनकी ट्रेड यूनियन का पंजीकरण जम्मू और कश्मीर सरकार के ट्रेड यूनियन रजिस्ट्रार के समक्ष पंजीकरण संख्या 705, दिनांक 11.12.1990 के अंतर्गत किया गया था। दिनांक 15.1.1991 को ट्रेड यूनियन रजिस्ट्रार, जम्मू और कश्मीर, जम्मू ने श्राइन बोर्ड कर्मचारी यूनियन, पंथल रोड, कटरा के अध्यक्ष को एक पत्र लिखकर सूचित किया कि वे स्वयं को ट्रेड यूनियन के रूप में गठित नहीं कर सकते, क्योंकि श्राइन बोर्ड, जो उनका नियोक्ता है, किसी व्यापार या उद्योग के अंतर्गत नहीं आता। उन्होंने आगे कहा कि बोर्ड के सभी कर्मचारियों की सेवा शर्तें जम्मू और कश्मीर माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1988 द्वारा नियंत्रित होती हैं और चूँकि इसके कर्मचारियों को उक्त अधिनियम की धारा 15 के अंतर्गत विधिवत् 'लोक सेवक' घोषित किया गया है, इसलिए वे ट्रेड यूनियन अधिनियम, 1926 के अंतर्गत यूनियन के रूप में पंजीकृत नहीं किए जा सकते और न ही उन्हें किसी व्यापार या उद्योग में नियोजित माना जा सकता है। अतः उन्होंने यूनियन को सूचित किया कि उन्हें यह संतोष हुआ है कि उपर्युक्त

पंजीकरण संख्या के अंतर्गत जारी पंजीकरण भूलवश प्राप्त कर लिया गया था और इसे 10 मार्च, 1991 से निरस्त (वापस लिया हुआ) माना जाएगा।

उन्हें प्रदान किए गए पंजीकरण को वापस ले लिए जाने के बावजूद अपीलकर्ता और अन्य कर्मचारियों ने अपनी ट्रेड यूनियन गतिविधियाँ जारी रखीं। अपीलकर्ताओं के अनुसार इन ट्रेड यूनियन गतिविधियों के कारण वे बोर्ड के अधिकारियों की नाराज़गी के शिकार हो गए, जिन्होंने उनकी वैध ट्रेड यूनियन गतिविधियों के कारण उन्हें प्रताड़ित करना प्रारम्भ कर दिया। यह प्रताड़ना ट्रेड यूनियन के सक्रिय सदस्यों के विरुद्ध व्यवस्थित कार्रवाई के रूप में सामने आई, जिनमें से कुछ को तो सेवा से भी हटा दिया गया। इससे प्रभावित कर्मचारियों ने अपनी सेवाओं की समाप्ति को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में रिट याचिका डब्ल्यू.पी. संख्या 497/1992 दायर की और परमादेश (mandamus) जारी करने तथा बोर्ड को उन्हें पूर्ण बकाया वेतन और सभी परिणामी लाभों सहित पुनः नियुक्त करने का निर्देश देने की प्रार्थना की।इस रिट याचिका का प्रतिवाद प्रथम प्रतिवादी बोर्ड द्वारा किया गया। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए कुछ कर्मचारियों को राहत प्रदान की और अन्य कर्मचारियों को राहत देने से इंकार कर दिया। जिन कर्मचारियों को राहत नहीं मिली, उन्होंने उच्च न्यायालय में एल.पी.ए. संख्या 182/1992 दायर की। बोर्ड ने भी कुछ कर्मचारियों को दी गई राहतों को चुनौती देते हुए एल.पी.ए. संख्या 183/1992 दायर की। दिनांक 27.1.1999 के एक सामान्य निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने इन लेटर्स पेटेंट अपीलों को यह कहते हुए खारिज कर दिया :

> "बोर्ड उन परीक्षणों को पूरा नहीं करता जिन्हें इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में उल्लिखित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में निर्धारित किया गया है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' नहीं है। इसलिए रिट याचिका ग्राह्य नहीं है। ऐसा कहने के पश्चात हमें याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध पारित सेवा-समापन के विवादित आदेशों के गुण-दोष की जांच करने की आवश्यकता नहीं है। अपीलकर्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियाँ स्वीकार की जाती हैं।"

इन अपीलों के माध्यम से पीड़ित कर्मचारी इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए हैं।

विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 8192/2001:

याचिकाकर्ता को 6.10.1978 को धर्मार्थ ट्रस्ट में चौकीदार के रूप में नियुक्त किया गया था और उसका दावा है कि जम्मू और कश्मीर श्री माता वैष्णो देवी श्राइन अधिनियम, 1986 के लागू होने के बाद वह श्राइन बोर्ड का कर्मचारी बन गया। याचिकाकर्ता का कहना है कि बोर्ड के अस्तित्व में आने के समय उसे रिसेप्शनिस्ट के रूप में नियुक्त किया गया था। उसकी शिकायत यह है कि बोर्ड द्वारा उसे देय वेतन का भुगतान नहीं किया जा रहा था। याचिकाकर्ता ने उपयुक्त राहत प्राप्त करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष एस.डब्ल्यू.पी. संख्या 663/1993 के रूप में एक रिट याचिका दायर की, जो कथित रूप से अभी लंबित है।

2.3.1998 को याचिकाकर्ता को एक आरोप-पत्र (चार्जशीट) दिया गया, जिसमें उस पर ₹20 के कथित गबन के कारण कदाचार के आरोप लगाए गए। इस संबंध में एक जांच की गई और दिनांक 21.3.1998 को उसे कारण बताओ नोटिस दिया गया कि उसकी सेवा क्यों न समाप्त कर दी जाए। अंततः उसके उत्तर पर विचार करने के पश्चात याचिकाकर्ता को 30.3.1998 को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने अपनी सेवा समाप्ति को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर की। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने इस रिट याचिका में उठे महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न को देखते हुए इसे एक बड़ी पीठ के समक्ष भेज दिया। अंततः उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अपने दिनांक 23.1.2001 के निर्णय में, एल.पी.ए. संख्या 182/1992 तथा 183/1992 में दिनांक 27.1.1999 को दिए गए पूर्ववर्ती खंडपीठ के निर्णय का अनुसरण करते हुए यह निर्णय दिया कि रिट याचिका ग्राह्य नहीं है और उसे खारिज कर दिया। याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध अपील करने के लिए विशेष अनुमति की मांग की है।

सिविल अपील संख्याएँ 4596/1999, 4597-4598/1999 तथा विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 8192/2001:

विशेष अनुमति याचिका में अनुमति प्रदान की गई।

प्रारम्भ में ही हमने अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित अधिवक्ता से पूछा कि उन्होंने उपयुक्त मंच के समक्ष राहत क्यों नहीं माँगी—लाइसेंस/किरायेदारी से संबंधित विवाद के मामले में सिविल न्यायालय के समक्ष तथा सेवा संबंधी विवाद के मामले में श्रम न्यायालय के समक्ष। अधिवक्ता ने उत्तर दिया कि अपीलकर्ताओं को एक अत्यंत दयनीय स्थिति में डाल दिया गया है, जहाँ उन्हें

न तो पूरी तरह एक श्रेणी में माना जा रहा है और न ही दूसरी में। अपीलकर्ताओं के अनुसार, 1988 के अधिनियम की धारा 20 सिविल न्यायालय को बोर्ड या उसके अधिकारियों के विरुद्ध किसी भी ऐसे कार्य के लिए, जो 1988 के अधिनियम के अंतर्गत सद्भावना में किया गया हो या किया गया माना गया हो, किसी वाद या कार्यवाही को स्वीकार करने से रोकती है। अधिवक्ता का तर्क था कि इस धारा की भाषा इतनी व्यापक है कि इससे न केवल सिविल न्यायालयों में बल्कि श्रम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के समक्ष भी सभी प्रकार की कार्यवाहियाँ रोकी जा सकती हैं। धारा 20 के इस प्रावधान की इसी समझ के आधार पर अपीलकर्ताओं ने जम्मू और कश्मीर के संविधान के अनुच्छेद 103 सहपठित अनुच्छेद 10 (जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के समतुल्य है) के अंतर्गत अपनी रिट याचिकाएँ दायर कर उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। अधिवक्ता का कहना है कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए रिट याचिका को अस्वीकार्य माना कि श्राइन बोर्ड भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में "राज्य" नहीं है और इसलिए वह रिट अधिकारिता के अधीन नहीं आता। अधिवक्ता के अनुसार, उच्च न्यायालय दो प्रकार से त्रुटि में पड़ गया है। पहला, उसने स्वयं को इस न्यायालय के निर्णय *भूरी नाथ बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य एवं अन्य1* के कुछ कथनों से बाध्य मान लिया, जबकि वे टिप्पणियाँ एक बिल्कुल भिन्न और पृथक संदर्भ में की गई थीं और उच्च न्यायालय द्वारा समझे गए विधिक सिद्धांत को स्थापित नहीं करतीं। दूसरा, यह निर्धारित करने के लिए कि क्या श्राइन बोर्ड "राज्य" है, उच्च न्यायालय ने कुछ ऐसे परीक्षण लागू किए जो त्रुटिपूर्ण हैं, और अन्य आवश्यक परीक्षणों को लागू करने में विफल रहा, जिन्हें इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की पीठ द्वारा *प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ केमिकल बायोलॉजी एवं अन्य2* के निर्णय में आवश्यक माना गया है। उच्च न्यायालय ने *सभाजीत तेवारी बनाम भारत संघ3* में निर्धारित परीक्षणों पर भरोसा किया, जिन्हें *प्रदीप कुमार बिस्वास* (उपर्युक्त) के निर्णय में विशेष रूप से निरस्त कर दिया गया है।

---

1. [1997] 2 एससीसी 745.
2. [2002] 5 एससीसी 11.
3. [1975] 1 एससीसी 485.

प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने, तथापि, यह कहा कि भूरी नाथ (उपर्युक्त) के मामले में की गई टिप्पणियाँ प्रत्यक्ष रूप से प्रासंगिक और लागू होती हैं। दूसरे मुद्दे के संबंध में, प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि यदि यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वर्तमान अपीलें भूरी नाथ (उपर्युक्त) के निर्णय द्वारा निर्णीत नहीं हैं, तो इन मामलों को उच्च न्यायालय को वापस भेजा जा सकता है ताकि वह *प्रदीप कुमार बिस्वास (उपर्युक्त)* में प्रतिपादित विधि के आलोक में रिट याचिकाओं की ग्राह्यता का निर्णय कर सके।

भूरी नाथ (उपर्युक्त) के मामले के तथ्यों तथा उस पृष्ठभूमि, जिसमें अनुच्छेद 33 में संबंधित टिप्पणियाँ की गई थीं, का विस्तार से विचार किया जाना आवश्यक है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, 1988 के अधिनियम के लागू होने का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि धारा 19 की उपधारा (1) के कारण बारिदारों के अधिकार समाप्त हो गए। धारा 19 की उपधारा (1) में प्रावधान है कि "इस अधिनियम के प्रारम्भ की तिथि से बारिदारों के सभी अधिकार समाप्त हो जाएंगे।" इसके साथ एक उपबंध भी है, जिसके अंतर्गत राज्यपाल को एक अधिकरण नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है, जो बारिदारों के अधिकारों के समाप्त होने के बदले बोर्ड द्वारा दिए जाने वाले प्रतिकर की सिफारिश कर सकता है। यह सिफारिश करते समय अधिकरण को उस आय का समुचित ध्यान रखना होगा जो बारिदार अपने बारिदार होने के कारण प्राप्त कर रहा था। इसके बाद बोर्ड को अधिकरण द्वारा भेजी गई सिफारिशों की जांच करनी होती है और वह जैसा उपयुक्त समझे वैसा निर्णय ले सकता है, और उसका निर्णय अंतिम होगा। जहाँ कोई बारिदार अपने अधिकारों का समर्पण कर देता है और स्वयं को बोर्ड के अधीन रोजगार के लिए प्रस्तुत करता है, वहाँ उसकी उपयुक्तता के अधीन उसे नियुक्ति में कुछ प्राथमिकता का अधिकार दिया गया है। धारा 19 तीन प्रकार के व्यक्तियों से संबंधित है: (i) बारिदार – 1988 के अधिनियम के लागू होते ही उनके अधिकार समाप्त हो जाते हैं, (ii) धर्मार्थ ट्रस्ट के कर्मचारी – 1988 के अधिनियम के प्रारम्भ होने पर वे बोर्ड के कर्मचारी बन जाते हैं, (iii) दुकानदार तथा अन्य पट्टाधारक – जो पहले किरायेदार थे, वे बोर्ड के किरायेदार बन जाते हैं।

कुछ बारिदारों ने, जिनके अधिकार 1988 के अधिनियम के कारण समाप्त हो गए थे, इस अधिनियम की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी। उनका कहना था कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(f) और 31 का उल्लंघन करता है, जो जम्मू और कश्मीर क्षेत्र में लागू थे।

भूरी नाथ (उपर्युक्त) के मामले में 1988 के अधिनियम की योजना का परीक्षण किया गया और यह देखा गया कि धारा 19 की उपधारा (1) के अंतर्गत बारिदारों के सभी अधिकार समाप्त हो जाते हैं। बारिदारों की ओर से यह तर्क दिया गया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(f) और 31 को संविधान (चवालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा दिनांक 20.6.1979 से निरस्त किए जाने का प्रावधान जम्मू और कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होता। अतः संपत्ति का अधिकार जम्मू और कश्मीर के निवासियों के लिए अब भी एक मौलिक अधिकार बना हुआ था। यह भी कहा गया कि 1988 के अधिनियम में उन बारिदारों को प्रतिकर (compensation) देने का कोई प्रावधान या प्रतिकर निर्धारित करने के लिए कोई दिशा-निर्देश नहीं है, जिनके अधिकार समाप्त कर दिए गए हैं। यह भी तर्क दिया गया कि बोर्ड एक नियंत्रित निगम है और सरकार का एक अंग है तथा श्राइन की सभी संपत्तियाँ सरकार में निहित हैं। उन्होंने बोर्ड की संरचना से संबंधित 1988 के अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख करते हुए यह दलील दी कि बोर्ड एक "राज्य-नियंत्रित निगम" है। बारिदारों ने आगे यह भी कहा कि 1988 के अधिनियम के अंतर्गत भेंट-चढ़ावे और अन्य संपत्तियों का अधिग्रहण कर उन्हें नियंत्रित निगम अर्थात् बोर्ड में निहित कर दिया गया। इसलिए उनके अधिकारों के उन्मूलन के बदले उन्हें प्रतिकर मिलने का अधिकार है और चूँकि धारा 19 में प्रतिकर का कोई प्रावधान नहीं है, अतः 1988 का अधिनियम असंवैधानिक है और विधायिका की *शक्तियों से परे (अल्ट्रा वायर्स)* है।

बोर्ड की ओर से भारत के संविधान के अनुच्छेद 31 के खंड (2-क) पर विशेष बल दिया गया, जो इस प्रकार है:

"(2-क) जहाँ कोई विधि किसी संपत्ति के स्वामित्व या उसके कब्जे के अधिकार को राज्य को या राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी निगम को हस्तांतरित करने का प्रावधान नहीं करती है, वहाँ केवल इस आधार पर कि वह किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करती है, उसे संपत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण या अधिग्रहणार्थ ग्रहण (requisition) का प्रावधान करने वाली विधि नहीं माना जाएगा।"

यह तर्क दिया गया कि श्राइन बोर्ड कोई "राज्य-नियंत्रित निगम" नहीं है और इसमें निहित संपत्तियाँ तथा चढ़ावे राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण में नहीं हैं और न ही उनका स्वामित्व किसी राज्य-नियंत्रित निगम को हस्तांतरित किया गया है। यह भी कहा गया कि 1988 के अधिनियम के अंतर्गत बोर्ड एक सांविधिक प्राधिकरण है, जिसे श्राइन तथा उसके अनुदानों, जिनमें उससे संबद्ध या उससे संबंधित भूमि और भवन भी शामिल हैं, के बेहतर प्रबंधन, प्रशासन और संचालन के लिए स्थापित किया गया है, जैसा कि 1988 के अधिनियम की प्रस्तावना में निर्दिष्ट परिसरों के संबंध में उल्लेखित है। पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के निर्णय *हरद्वारी लाल बनाम जी.डी. तपासे तथा आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय*4 के निर्णय *किरण बाबू बनाम आंध्र प्रदेश सरकार*5, पर भरोसा करते हुए यह कहा गया कि जब राज्यपाल अधिनियम के अंतर्गत पदेन अध्यक्ष के रूप में अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हैं, तब वे राज्य के कार्यपालिका प्रमुख के रूप में शक्तियों का प्रयोग नहीं करते। उनकी भूमिका केवल पारंपरिक भूमिका तक सीमित होती है, जिसका उद्देश्य धार्मिक संस्थानों या अनुदानों तथा उनकी संपत्तियों के उचित प्रबंधन और उत्तरदायी प्रशासन को सुनिश्चित करना होता है, इससे अधिक कुछ नहीं। अतः श्राइन बोर्ड के अधिवक्ता तथा राज्य के अधिवक्ता दोनों ने यह तर्क दिया कि यद्यपि श्राइन की संपत्तियाँ और निधियाँ राज्य के नियंत्रण में हैं, फिर भी वे राज्य में निहित नहीं हैं, और इसलिए 1988 का अधिनियम एक वैध विधि है। उन्होंने "अधिग्रहण" (acquisition) और "वंचना" (deprivation) के बीच अंतर भी बताया। उनके अनुसार, यद्यपि 1988 का अधिनियम बारिदारों को चढ़ावे प्राप्त करने के उनके अधिकार से वंचित करता है, परंतु राज्य द्वारा कोई अधिग्रहण नहीं किया गया है, क्योंकि केवल वंचित करना अधिग्रहण के समान नहीं होता। अतः यह कहा गया कि 1988 का अधिनियम संविधान के विरुद्ध नहीं है।

इस न्यायालय ने भूरी नाथ (उपर्युक्त) के मामले में राज्यपाल की राज्य के कार्यपालिका प्रमुख के रूप में निहित कार्यकारी शक्तियों और अधिनियम के अंतर्गत पदेन अध्यक्ष के रूप में उनके द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों के बीच किए गए भेद को स्वीकार किया। दो माननीय न्यायाधीशों की खंडपीठ ने यह प्रश्न उठाया कि "जब राज्यपाल अधिनियम के अंतर्गत यह कार्य करते हैं, तो क्या वे इसे राज्य के कार्यपालिका प्रमुख के रूप में मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह से करते हैं, या अपने आधिकारिक पद के रूप में राज्यपाल की क्षमता में?" खंडपीठ ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि "अधिनियम के अंतर्गत शक्तियों और कार्यों का प्रयोग उन

शक्तियों और कार्यों से भिन्न और पृथक है, जो औपचारिक रूप से मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद के साथ उनके नाम से किए जाते हैं।"

अंततः, यह प्रश्न विचारार्थ लिया गया कि क्या बोर्ड अनुच्छेद 31 के खंड (2-क) के अर्थ में "नियंत्रित निगम" है। 1988 के अधिनियम के प्रावधानों का विस्तार से परीक्षण करने तथा *गुल्लापल्ली नागेश्वर राव बनाम ए.पी. एसआरटीसी एवं भारतीय संघ*6 और *भारतीय संघ बनाम सुधांसु मजूमदार*7 के मामले में, पैरा 33 में इस प्रकार अवलोकन किया गया::

"33. एच.एम. सीरवै की पुस्तक भारत का संविधान (Constitutional law of India) (तृतीय संस्करण), खंड-II, पृष्ठ 1109, अनुच्छेद 30 में यह कहा गया है कि जहाँ साधारण अधिग्रहण के मामलों में विधि पूर्ण प्रतिकर का प्रावधान करती है और दूसरी ओर सामाजिक अभियांत्रिकी या सुधार की व्यापक योजनाएँ होती हैं, वहाँ व्यक्तिगत न्याय तथा सामुदायिक हित–दोनों के दृष्टिकोण से विधिक दृष्टि द्वारा समन्वय स्थापित किया जाता है। बेला बनर्जी8 के निर्णय के पश्चात यह स्पष्ट हुआ कि संविधान के प्रख्यात विधिवेत्ता (संविधान के निर्माता) ने अनुच्छेद 31(2) में जिस बात को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता था, उसे निहितार्थ पर छोड़कर एक गंभीर त्रुटि कर दी। बेला बनर्जी9 के मामले ने दिखाया कि निर्माताओं का आशय सफल नहीं हो सका, क्योंकि उसे अनुच्छेद 31(2) में स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया गया था। स्पष्टतः संविधान में संशोधन का उद्देश्य विद्यमान विधि को परिवर्तित करना होता है, और चौथे संशोधन द्वारा प्रतिकर की पर्याप्तता के आधार पर चुनौती को बाहर करके बेला बनर्जी10 के मामले में प्रतिपादित उस विधि को बदलने का प्रयास किया गया, जिसमें यह कहा गया था कि अनुच्छेद 31(2) के अंतर्गत प्रतिकर का अर्थ पूर्ण और न्यायसंगत धनात्मक समतुल्य है। चौथे संशोधन के पश्चात "प्रतिकर" शब्द का अर्थ पूर्ण और न्यायसंगत धनात्मक समतुल्य नहीं रह सकता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो विधि अपरिवर्तित रहती और चौथे संशोधन का उद्देश्य विफल हो जाता। प्रतिकर की अपर्याप्तता के आधार पर चुनौती को हटाकर चौथे संशोधन ने

---

4. एआईआर (1982) पंजाब एवं हरियाणा 439
5. एआईआर (1986) आंध्र प्रदेश 275
6. सप्लीमेंट्री 1 एससीआर 319

विधायिका की शक्ति पर लगी उस सीमा को समाप्त कर दिया जिसके अनुसार विधि की वैधता के लिए पूर्ण और न्यायसंगत धनात्मक समतुल्य का भुगतान आवश्यक था। चौथे संशोधन के बाद यदि कोई विधि ऐसा प्रतिकर निर्धारित करती है जो पूर्ण और न्यायसंगत धनात्मक समतुल्य का 80 प्रतिशत हो, तो भी वह अनुच्छेद 31(2) का उल्लंघन नहीं करेगी और वैध विधि मानी जाएगी। चौथे संशोधन ने 'अपर्याप्त प्रतिकर' की अवधारणा प्रस्तुत करके यह परिणाम प्राप्त किया। उपरोक्त प्रावधानों के विचार के आधार पर हम बिना किसी संदेह के यह निष्कर्ष निकालते हैं कि बोर्ड संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'नियंत्रित निगम' नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 31 के खंड (2-क) के प्रभाव से न तो बोर्ड और न ही श्राइन की संपत्तियाँ राज्य में निहित होती हैं। चढ़ावे की वसूली का अधिकार अथवा बारिदारों की संपत्तियों का, यदि कोई हो, विनिवेश अथवा चढ़ावे की वसूली या उसमें हिस्सेदारी का अधिकार राज्य में निहित नहीं होता। परिणामतः, अधिनियम की धारा 19(1) संविधान के अनुच्छेद 19(1)(f) या अनुच्छेद 31(2) के प्रतिकूल नहीं है और इसलिए अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं है।"

भूरी नाथ (उपर्युक्त) के निर्णय में प्रतिपादित विधि के सिद्धांत का गहन परीक्षण करना हमारे लिए आवश्यक हो गया, क्योंकि प्रतिवादियों द्वारा यह दृढ़ता से तर्क दिया गया है और उच्च न्यायालय ने भी इसे स्वीकार किया है कि भूरी नाथ का निर्णय अपीलकर्ताओं के विरुद्ध तर्क को निर्णायक रूप से स्थापित करता है तथा यह घोषित करता है कि श्राइन बोर्ड भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन नहीं है। हमारे मत में यह तर्क निराधार है। भूरी नाथ का मामला इस प्रश्न से संबंधित नहीं था कि क्या अनुच्छेद 226 का विस्तार श्राइन बोर्ड तक हो सकता है। जैसा कि पहले बताया गया है, न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या बारिदारों का संपत्ति का अधिकार केवल समाप्त किया गया था या उसे किसी "राज्य-नियंत्रित निगम" को स्थानांतरित कर दिया गया था। इसी के आधार पर यह निर्धारित होना था कि बारिदारों को प्रतिकर का अधिकार है या नहीं।

---

7. [1971] 3 एससीसी 265

8. [1954] एससीआर 558

9. उक्त

10. उक्त

यह प्रश्न आगे चलकर 1988 के अधिनियम की संवैधानिक वैधता को भी प्रभावित करता था, क्योंकि उस अधिनियम में बारिदारों के अधिकार समाप्त किए जाने की स्थिति में उन्हें प्रतिकर देने के लिए कोई सिद्धांत या दिशा-निर्देश निर्धारित नहीं किए गए थे। इन सभी मुद्दों का उस प्रश्न से कोई संबंध नहीं था कि क्या श्राइन बोर्ड उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन आता है या नहीं। भूरी नाथ के मामले में केवल इतना ही निर्णय दिया गया था कि श्राइन बोर्ड "राज्य-नियंत्रित निगम" नहीं है। यह मुद्दा अपने आप में इस प्रश्न का निर्णय नहीं करता कि क्या श्राइन बोर्ड भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन है। संविधान के अनुच्छेद 226 का दायरा कहीं अधिक व्यापक है। इसका प्रयोग "किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण" के विरुद्ध किया जा सकता है, और उपयुक्त मामलों में "किसी भी सरकार" के विरुद्ध भी।

अनुच्छेद 12, संविधान के भाग III में स्थित है और इस प्रकार है:

12. परिभाषा.– इस भाग में, जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो, "राज्य" में भारत की सरकार और संसद तथा प्रत्येक राज्य की सरकार और विधानमंडल तथा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकरण सम्मिलित होंगे।

इसका उद्देश्य भाग III में प्रयुक्त शब्द "राज्य" की परिभाषा करना है, जो मौलिक अधिकारों से संबंधित है। यहाँ भी यह समावेशी परिभाषा सरकार, भारत की संसद तथा राज्यों की विधानसभाओं के अतिरिक्त "सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकरणों" को अपने दायरे में सम्मिलित करती है। इसी संदर्भ में *अजय हसिया बनाम खालिद मुजीब सहरवर्दी*11 तथा *रमना दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण*12 के मामलों में "राज्य की साधनता या एजेंसी" का सिद्धांत विकसित किया गया, जिनमें इस विषय में विस्तृत परीक्षण निर्धारित किए गए। इन परीक्षणों के बावजूद, कुछ संस्थाएँ जो सोसाइटी के रूप में निगमित थीं, उन्हें सबाजीत तिवारी बनाम भारत संघ के मामले में अनुच्छेद 12 के दायरे से बाहर माना गया।

कानून में उत्पन्न हुई इन प्रत्यक्ष असंगतियों का समाधान सात न्यायाधीशों की बड़ी पीठ ने *प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान* के मामले में किया, जिसमें यह स्पष्ट किया गया कि यह निर्धारित करने के लिए कौन-से सही परीक्षण लागू किए जाने चाहिए कि कोई संस्था राज्य की साधनता या एजेंसी है या नहीं, और इस प्रकार क्या वह उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन आती है।

संभव है कि कुछ दृष्टियों से *भूरी नाथ बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य* के निर्णय में की गई कुछ टिप्पणियों की शुद्धता, *प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान* में प्रतिपादित सिद्धांतों के प्रकाश में विचार-विमर्श का विषय हो सकती है। किन्तु, चूँकि उच्च न्यायालय को *प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान* में प्रतिपादित विधि पर विचार करने का अवसर या लाभ प्राप्त नहीं हुआ था, इसलिए हमारे लिए इस विषय पर कोई मत व्यक्त करना उपयुक्त नहीं होगा। हमारे लिए इतना कहना पर्याप्त है कि भूरी नाथ बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य का निर्णय किसी भी प्रकार से वह विधि स्थापित नहीं करता जैसा कि उच्च न्यायालय ने समझा है, अर्थात् यह कि श्राइन बोर्ड उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन नहीं है।

हम प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री पी.पी. राव की इस दलील से सहमत होने की प्रवृत्ति रखते हैं कि इस मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेजा जाना चाहिए, ताकि वह *प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान* में प्रतिपादित विधि के आलोक में इस प्रश्न पर विचार कर सके कि क्या बोर्ड उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन है। उच्च न्यायालय ने रिट याचिकाओं की ग्राह्यता पर अपने निर्णय के कारण उसके समक्ष प्रस्तुत मामलों के गुण-दोष पर भी विचार नहीं किया था।

---

11. एआईआर (1981) एससी 487

12. एआईआर (1979) एससी 1628

इन सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारा मत है कि उच्च न्यायालय के विवादित (आक्षेपित) निर्णयों को निरस्त किया जाना आवश्यक है।

अतः निम्नलिखित आदेश पारित किया जाता है:

हम अपीलों को स्वीकार करते हुए उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णयों को निरस्त करते हैं और एलपीए संख्या 182/1992, एलपीए संख्या 183/1993, रिट याचिका ओडब्लूपी संख्या 523/1995 तथा रिट याचिका एसडब्लूपी संख्या 930/1998 को उच्च न्यायालय को इस निर्देश के साथ वापस भेजते हैं कि वे प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुसार उनकी सुनवाई कर निर्णय दें।

हमने अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा व्यक्त उस आशंका पर कोई मत व्यक्त करने से परहेज़ किया है कि 1988 के अधिनियम की धारा 20 सिविल वादों तथा श्रम विधियों के अंतर्गत होने वाले न्यायनिर्णयन को प्रतिबंधित करती है। अतः उच्च न्यायालय सबसे पहले यह विचार करेगा कि क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिकाएँ ग्राह्य हैं, और इसके लिए वह यह परीक्षण करेगा कि क्या श्राइन बोर्ड उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन है, जैसा कि *प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान* में प्रतिपादित सिद्धांतों और परीक्षणों के आधार पर निर्धारित किया गया है।

उच्च न्यायालय यह भी विचार करेगा कि क्या रिट याचिकाकर्ताओं के लिए सिविल वाद या औद्योगिक न्यायनिर्णयन के माध्यम से कोई वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है। यदि 1988 के अधिनियम की धारा 20 के प्रावधान की व्याख्या करने पर उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि रिट याचिकाकर्ताओं के लिए ऐसा कोई वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है, तो उच्च न्यायालय के लिए यह खुला होगा कि वह इस संबंध में उपयुक्त निर्णय ले, जिसमें पक्षकारों को उपयुक्त वैकल्पिक उपाय के लिए भेजना भी शामिल है।

यदि उच्च न्यायालय यह मत ग्रहण करता है कि रिट याचिकाएँ ग्राह्य हैं और रिट याचिकाकर्ताओं के लिए कोई अन्य समान रूप से प्रभावी वैकल्पिक उपाय उपलब्ध नहीं है, तो उच्च न्यायालय रिट याचिकाओं का उनके गुण-दोष के आधार पर निर्णय करेगा।

यद्यपि अधिवक्ताओं ने हमारे समक्ष अनेक निर्णयों का उल्लेख किया है, तथापि जिस दृष्टिकोण को हम ग्रहण करने के इच्छुक हैं, उसके परिप्रेक्ष्य में उन्हें संदर्भित करना आवश्यक नहीं समझते।

पक्षकारों के सभी तर्क उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के लिए खुले रखे जाते हैं।

यह देखते हुए कि रिट याचिकाएँ काफी समय से लंबित हैं और वे कर्मचारियों की सेवा-समाप्ति से संबंधित मामलों से भी जुड़ी हैं, यह उपयुक्त होगा कि उनकी सुनवाई शीघ्र की जाए। अतः उच्च न्यायालय से अनुरोध किया जाता है कि वह इस निर्णय की प्राप्ति की तिथि से, यथासंभव, छह माह की अवधि के भीतर रिट याचिकाओं का निस्तारण कर दे।

वी.एस.एस अपील का निपटारा किया गया।

यह अनुवाद पियूष आनंद, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|